ISSN : 2582-9092

हरिद्रा
(सांस्कृतिक शोध का अन्तराष्ट्रीय उपक्रम)

पातंजल योगसूत्र में "नियम"

डॉ. कश्यप एम. त्रिवेदी

सारांश : अष्टांग योग में आठ अंग का महत्त्व दर्शाया गया है । यहाँ दूसरे अंग 'नियम' का निरुपण किया गया है । शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान यह पाँच नियम हैं । वर्तमान में लोगों द्वारा योगासानादि किये जाते हैं, अपितु यम – नियम का पालन नहीं किया जाता, अतः यहाँ शौचादि नियमों का निरुपण किया गया है ।

उद्देश्य : अधिकतर लोग आसनादि में संलग्न रहते हैं । आसनादि से विशेष लाभ प्राप्त करने के लिये सुचारु आचरण आवश्यक है, यह आचरण की बात यम – नियम में कही गई है । अतः लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का उद्देश्य है ।

मुख्य शब्द : नियम, पवित्रता, संतोष, तप, व्रत, स्वाध्याय, अभ्यास, प्रणिधान, समर्पण, उपासना ।

२१ जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिन के रूप में मनाने की यूनो की घोषणा के बाद लोगों में योग के प्रति जागृति आई है। यह योग केवल शरीर स्वास्थ्य के लिये नहीं है, अपितु मन और मस्तिष्क के स्वास्थ्य के लिये भी आवश्यक है । योग का उद्देश केवल शरीर को निरोगी रखने का नहीं है, अपितु योग से नैतिकता, सद्भाव, पवित्रता आदि भी अभिष्ट हैं । अतः हमें उनको एक जीवनशैली के रूप में अपनाना होगा द्य यह जीवनशैली की बात अष्टांग योग में है । वर्तमान में लोग आसन, प्राणायामादि पर बल देते हैं, योग में यह आवश्यक है , अपितु यम – नियम अर्थात् आहार – विहार पर ध्यान न रखने से कदाचित् योग आपत्तिजनक बन जायेगा या इच्छित लाभ प्राप्त नहीं होगा । अतः यहाँ अष्टांग योग के आठ अंगों में से 'नियम' के निरूपण का उद्देश है । महर्षि पतञ्जलि ने अष्टांग योग में सर्वप्रथम यम – नियम को रखा है ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।१

योग के अंगों का अनुष्ठान आवश्यक है । इन अंगों के अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय होता है । अशुद्धि का क्षय होने से विवेकख्याति – सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति होती है । अतः यम – नियम सहित अष्ट अंगों का सम्यक् रूप से आचरण आवश्यक हैय अंगों का क्रमशः आचरण महत्त्वपूर्ण है । हम पहले आसनादि का आचरण करें, बाद में यम – नियम, यह योग्य नहीं है । अतः सर्वप्रथम अष्टांग योग में महर्षि पतञ्जलि यम – नियम का स्वरूप स्पष्ट करते हैं । नियम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए सूत्र देते हैं –

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।।२

पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान नियम हैं ।

1. (शौच) पवित्रता :

वाचस्पति मिश्र तत्त्ववैशारदी में शौच की व्याख्या दर्शाते हैंय "तत्र शौचं" इसमें "आदिशब्देन गोमयादयो गृह्यन्ते ।"३ अर्थात् 'आदि' शब्द से गोमय आदि ग्रहण करना है । गौमूत्र, यवागु (जव) आदि पदार्थ

ISSN : 2582-9092

पवित्र हैं , उनका आहार ग्रहण करना चाहिए । यह पवित्रता, शौच अर्थ अधिक विस्तारपूर्ण है । शौच के अंदर आंतरिक – बाह्य दोनों आ जाते हैं । स्नान, हस्तप्रक्षालनादि बाह्य शौच है, मन में अपवित्र विचार न करना, अपवित्र न देखना, सुनना पवित्रता है । यानि शौच, पवित्रता अपनी जीवनशैली होनी चाहिए । अतः योग सूत्रकार सूत्र देते हे य "वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्" ।।२.३३।।४

अर्थात् मन में जब ब्राह्मणादि की हिंसा, पशु आदि की हिंसा का विचार आने लगे तब यह विचार और कार्य अनंत दुःख देनेवाले हैं ऐसी प्रतिपक्ष भावना करके उनको शांत करने का उपाय करना चाहिए । यह बात व्यासजी अपने भाष्य में कहते हैं :

"वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता ।

लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्ष भावनम् ।।३४ ।।५

श्री वृद्धगौतम स्मृति में शौच के पाँच प्रकार दर्शाए हैं –

"मनः शौचं कर्मशौचं कुलशौचं च भारत ।

शरीरशौचं वाक् शौचं शौचं पंचविधं स्मृतम् ।।६

१. मन की पवित्रता, २. कर्म की पवित्रता ३. कुल की पवित्रता ४. शरीर की पवित्रता और ५. वाणी की पवित्रता ।

१. मन की पवित्रता :

हम बाह्य देखाव में चाहे जितनी भी पवित्रता रखें, शुभ कर्म करें, परंतु मन में ही भिन्न विचार हो तब वह दानादि शुभ कर्म भी अपवित्र बनकर पापरूपी फल प्रदान करते हैं । केवल बाह्य देखाव के लिये वह कर्म नहीं होना चाहिए । मन और भाव पवित्र हों तो कठौती में भी गङ्गा प्रगट होती है । 'मन चंगा तो कठौती में गङ्गा ।'

2. कुल शौच :

अपने कुल से जो पवित्र हो । ब्राह्मणादि परंपरा से कुल पवित्र है, अपितु ब्राह्मणादि भी अपवित्र रहते हैं, स्नान संन्ध्यादि कर्म न करता हो तो वो भी शूद्र ही है, और उनको प्रत्येक कर्म में से बहिष्कृत किया जाता है ।

"त्रिकालस्नानहीनो यः संध्योपासनावर्जितः ।

स विप्रः शूद्रतुल्यो हि सर्वकर्मबहिष्कृतः ।।"७

3. कर्म की पवित्रता :

व्यक्ति अपना जो भी कर्म करे उसमें मन–वचनदृभावादि की पवित्रता होनी चाहिएद्य कर्म में भाव का महत्त्व रहता है । शुभ कर्म भी अशुभ भाव से अशुभ बन जाता है । अपने जीवनयापन के लिये आमदनी प्राप्ति हेतु किया जाता कर्म भी पवित्र होना चाहिए । कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने अपने 'योगशास्त्र' में "न्यायसंपन्नविभवः"८ अर्थात् न्यायपूर्वक जिसने वैभव प्राप्त किया है उनको ही योग का अधिकार है ऐसा दर्शाया है ।

4. शरीर की पवित्रता :

शरीर को स्नानादि से पवित्र रखना चाहिए । वस्त्रादि स्वच्छ, आनंददायक, शरीर को शोभा प्रदान करें ऐसे होने चाहिए । शरीर वास्तव में अपवित्र है, जुगुप्सा प्रेरक है ऐसा समझकर शरीर से आसक्ति नहीं रखनी

ISSN : 2582-9092

चाहिएँ । अन्य का शरीर भी मलमूत्रादि से अपवित्र है ऐसा जानकर अन्य के शरीर के संसर्ग की इच्छा नहीं रखनी चाहिए ।

"शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ।।"६

5. वाणी की पवित्रता :

वाणी में मधुरता रखने वाला सबका प्रिय होता है । जो आपने अनुभव किया हो– देखा हो वही, कोई भी कपट रखे बिना सत्य बोलना वाणी की पवित्रता है । भगवद्गीता में अन्य को उद्वेग न देनेवाला सत्य, प्रिय, हितकारी और स्वाध्याय का अभ्यास ही वाणी का तप कहा गया है ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितकरं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चौव वाङ्मयं तप उच्यते ।।१०

महर्षि पतञ्जलि शौच के फल का निरूपण करते हुए दर्शाते हैं किय शौच से अन्तःकरण की शुद्धि होती है, मन की सौम्यता, एकाग्रता, इन्द्रियजय और आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त होती है ।

"सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।।"११

२. संतोष : सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ।१२

संतोष से सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है । व्यासभाष्य में महाभारत में से उद्धृत द्रष्टान्त में कहा है कि,तृष्णा का क्षय ही श्रेष्ठ सुख है, कामसुख, स्वर्गसुख आदि उनके समीप में सोलहवीं कला समान भी नहीं हैं ।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।।१३

आचार्यजी श्रीमन्नथुराम शर्मा कहते हैं किय "प्रारब्धकर्मानुसार जो अन्नवस्त्रादि शास्त्रोक्त भोग सहजता से प्राप्त हो उसमें तृप्ति रखना संतोष है ।"१४

संतोष के बारे में सुभाषित है, जिस में संतोष ही पुरुषों का परम निधि कहा गया है ।

"सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते,
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कंदैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालम्,
संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ।।"१५

३. तप : कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपः । १६

तप से शरीर की शुद्धि होती है, अतः इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त होती है, अर्थात् दूरश्रवणादि सिद्धि भी प्राप्त होती है ।

'तप' शब्द 'तप् धातु से निष्पन्न हुआ है । उसका अर्थ है, 'तपना' और प्रेरक धातु रूप है 'तपाना' । जिस प्रकार सुवर्ण को तपाने से उसमें जो अशुद्धियाँ होती हैं वे दूर होती हैं, उसी प्रकार तप से शरीर, मन और चित्त शुद्ध बनते हैं ।

मन, वचन और शरीर से पापकर्म नहीं करना ही तप है । भगवद्गीता में सात्विक, राजस और तामस तप की व्याख्या दी गई है । उसमें देवादि का पूजन, सत्य, प्रिय, हितकर वचन वाणी का और मन की प्रसन्नता, आत्मसंयम, मौन आदि मानसिक तप, जो सत्वगुण की भावना से किया गया हो, सात्विक है ।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।

ISSN : 2582-9092

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चौव वाङ्मयं तप उच्यते ।।१७

कृच्छ चान्द्रायण, पंचाग्नि, एकादशी, शिवरात्रि आदि व्रतों का आचरण करना तप है । तप से ही आकाशगमनादि विशिष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । समुद्रपानादि दुष्कर कार्य तप से सिद्ध होते हैं । वेदादिक विद्या, रसायनविद्या, दैव स्थिति आदि सर्व सिद्धि तप से ही प्राप्त होती है ।

जगत् की उत्पत्ति का मूल, मध्य, अंत आदि तप ही है । यह संपूर्ण जगत् तप से ही आवृत्त है ।

तपोमूलं सर्वं दैवमानुषकं जगत् ।
तपोमध्यं तपोऽन्तं च तपसा च तथाऽऽवृतम् । १८

प्राणायाम को परम तप कहा गया है । ''प्राणायामः परं तपः ।'' क्योंकि प्राणायाम से ही शरीर और मन की अशुद्धियाँ दूर होती हैं ।

शरीर को अयोग्य रूप से विशेष कष्ट देना तप नहीं है । गीता में उसे तामस तप कहा गया है । विशेष रूप से खडे रहना, शरीर को अधिक से अधिक कष्ट देना तप नहीं है । वास्तव में तप वही है, जो चित्त की प्रसन्नता में सहायक हो, शरीर, इन्द्रियों को पीडा दायक न हो वही तप योग्य है ।

''तच्च चित्तप्रसादनं बाधमानमनेनासेव्यमिति मन्यते ।१९

५. स्वाध्याय : स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोगः ।२०

स्वाध्याय से इष्टदेवता का साक्षात्कार होता है । व्यासभाष्य में बताया गया है कि देव, महर्षि और सिद्ध पुरुष स्वाध्यायशील को दर्शन देते हैंय उनके कार्य में सहयोग देते हैं ।

देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्त इति ।।२१

पू. भाणदेवजी की दृष्टि में स्वाध्याय के तीन सोपान हैं । प्रथम सोपान में अध्यात्म मार्ग में सहायक होनेवाले ग्रन्थों का अध्ययन है । योग्य मार्ग पर आगे बढने हेतु सत् ग्रन्थों का स्वाध्याय आवश्यक है । यद्यपि इस ग्रन्थ के अध्ययन कर्ता को यह ध्यान रखना है कि ग्रन्थ गुरु का विकल्प नहीं है ।

दूसरे सोपान में अध्ययन का चिंतन करना चाहिए । चिंतन से नूतन अर्थ प्रगट होते हैं । तीसरे सोपान में प्रणव, गायत्री आदि मन्त्रों के जप से शास्त्र के रहस्य चित्त में प्रगट होते हैं ।२२ गीता में जपयज्ञ को भगवान ने अपनी विभूति कहा है ।

"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मिद्य'' मनुस्मृति में कहा गया है कि वैश्वदेवादि यज्ञ जपयज्ञ के सोलहवे भाग के समान भी नहीं हैं ।

''ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।२३

पू. कृपानाथ जपयज्ञ के संदर्भ में कहते हैं कि ''जप से मन की बहिर्वृत्ति का विनाश होता है । कामना की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों को उपास्य देव की प्रसन्नता से इच्छित फल की प्राप्ति होती है और निष्काम को चित्त की शुद्धि होती है'' ।२४

५. ईश्वरप्रणिधान : समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् । २५

ईश्वरप्रणिधानध्समर्पण भाव से समाधि सिद्ध होती है । वाचस्पति मिश्र अपने "तत्त्ववैशारदी'' में स्पष्टता करते हैं कि, ईश्वरप्रणिधान में योग के सभी अंग की आवश्यकता है । ईश्वरप्रणिधान प्रारंभ में बहिरंग

ISSN : 2582-9092

(क्रियायोग) है, पश्चात् समाधि का अंतरंग साधन है । यह बाबत स्वयं पतञ्जलि ने ही दी है । तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को महर्षि पतञ्जलि ने क्रियायोग कहा है ।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।२६

भाणदेवजी की दृष्टि से तप संकल्पात्मक और क्रियात्मक है । स्वाध्याय ज्ञानात्मक है और ईश्वरप्रणिधान भावात्मक । ईश्वरप्रणिधान (समर्पण) भावपूर्वक होना चाहिए । यह देवपूजन विधिपुरःसर, श्रद्धा और धैर्य के साथ लंबे समय तक आचरण करने से ईश्वर समर्पण लाभदायक बनता है । हमारी परंपरा में श्रौत, स्मार्त और पौराणिक परंपरा में उनके अनेकविध उपासना के भेद दर्शाए गए हैं । गायत्री उपासना, प्रणवोपसना, पंचोपचारपूजन आदि में से अपने आध्यात्मिक विकास में सहायक विधि का स्वीकार कर, अपने गुरु के मार्गदर्शन में उनका अनुष्ठान करना चाहिए ।२७ ईश्वरप्रणिधान से समाधि लाभ प्राप्त होता है ।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।२८

वैराग्यादि से समाधि प्राप्त होती है य तदुपरांत समर्पण भाव से भी समाधि प्राप्त होती है, यह बात उपर्युक्त सूत्र में दर्शायी गयी है । यह समर्पण पूर्ण और भाव से होना चाहिए, बाह्य दिखावा नहीं । समर्पण का संकल्प निष्ठापूर्वक होना चाहिए, क्षण–प्रतिक्षण प्रत्येक कार्य मनोभाव से ईश्वर को अर्पण होना चाहिए । अपना अभिमान विलीन होना चाहिए । तब चित्तवृत्तियाँ शान्त होती हैं । ऐसे शान्तात्मा को ईश्वर पसंद करके समाधि लाभ कराते हैं ।

समाधि सिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।२६

अतः ईश्वरप्रणिधान पूजन, जप, यज्ञ आदि से संलग्न होने से बहिरंग और समाधि में, समर्पण में आंतरिक मनोवलण युक्त होने से अंतरंग भी है ।

जपादि उनके अर्थ की भावना को समझकर करने चाहिएँ ।

तज्जपस्तदर्थभावनम् द्यद्य १.२८ ।। योगसूत्र

इस सूत्र के भाष्य में स्पष्ट किया गया है कि, ईश्वर का वाचक प्रणव है, उसका जप अर्थ की भावना के साथ करने से योगी का चित्त एकाग्र होता है ।

विष्णुपुराण में कहा है कि, इसके (प्रणव के) स्वाध्याय से योगाभ्यास और योगाभ्यास से स्वाध्याय, स्वाध्याय और योग के सहयोग से परमात्मा प्रकाशित होता है ।

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमासते ।

स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।।३०

तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान समाधि की भावना व अविद्यादि पंच क्लेशों को क्षीण करने के लिये हैं ।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च ।३१

यह अविद्यादि पंच क्लेश दूर होने से समाधि लाभ की योग्यता का निर्माण होता है । 'भोजवृत्ति' में भी यह बात कही है :

स भगवानीश्वरः प्रसन्नः सन् अन्तरायरुपान् ।

क्लेशान् परिहृत्य समाधि संबोधयति ।।३२

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं : नित्य – नैमित्तिक कर्म से संबद्ध, कामनामय संकल्प से रहित, यम–नियमों से युक्त, रागरहित, क्रोधजित्, सत्यधर्मपरायण, गुरुसेवारत, सद्गुरु द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त, सदाचारी योग का

ISSN : 2582-9092

अधिकारी है ।

विध्युक्तकर्मसंयुक्तः कामसंकल्पवर्जितः ।
यमैश्च नियमैर्युक्तः सर्वसंगविवर्जितः ।।
कृतविद्यो जितक्रोधः सत्यधर्मपरायणः ।
गुरुशुश्रूषरतः पितृमातृपरायणः ।।
स्वाश्रमस्यः सदाचारी विद्वद्भिश्च सुशिक्षितः ।।३३

इस यम –नियम के पालन के साथ योग होगा तब ही यूनो की २१ जून को योग दिन मनाने की घोषणा सार्थक होगी ।

यह प्रस्ताव २५ सितंबर, २०१४ को संयुक्त राष्ट्र महासभा (यु–एन–जी–ए) में रखा गया तब मा. प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने संयुक्त राष्ट्र महासभा को संबोधित करते हुए कहा किय " योग प्राचीन भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की अमूल्य देन है । योग अभ्यास शरीर, मन, विचार, कर्म, आत्मसंयम एवं पूर्णता की एकात्मकता तथा मानव एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करता है । यह स्वास्थ्य एवं कल्याण का पूर्णतावादी दृष्टिकोण है । योग मात्र व्यायाम नहीं है, बल्कि स्वयं के साथ, विश्व और प्रकृति के साथ एकत्व खोजने का भाव है । योग हमारी जीवनशैली में परिवर्तन लाकर हमारे अन्दर जागरूकता उत्पन्न करता है तथा प्राकृतिक परिवर्तनों से शरीर में होनेवाले बदलावों को सहन करने में सहायक होता है । आइए, हम सब मिलकर योग को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में स्वीकार करने की दिशा में कार्य करें । "३४

११ दिसंबर,२०१४ में प्रस्ताव पारित करते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्वीकार किया किय "योग स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिय पूर्णतावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है । योग विश्व की जनसंख्या के स्वास्थ्य के लिये तथा उनके लाभ के लिय विस्तृत रूप से कार्य करेगा । योग जीवन के सभी पहलुओं में सामंजस्य बिठाता है और इसीलिए, बिमारी रोकथाम, स्वास्थ्य संवर्द्धन और जीवनशैली संबंधी कई विकारों के प्रबंधन के लिये जाना जाता है ।"३५

योग जीवनशैली है, जीवनशैली बननी चाहिए । हमारे ऋषि–मुनियों ने उसको जीवनशैली के रूप में अपनाया था और अपने प्रभाव से प्रकृति आदि मे शांति का स्थापन किया था । 'यूनो' भी इस बात को स्वीकरता है । यम, नियम के पालन से इस उद्देश्य को सिद्ध करने में सहायता मिलेगी ।

पादटीप

1. योगसूत्र – पाद २.२६ , संपादक : रामकृष्ण तुलजाराम व्यास,
   प्रकाशक : संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधीनगर
2. एजन दृ २.३२
3. योगसूत्र – तत्त्ववैशारदी, पृ. २८५
4. एजन –२.३३
5. एजन –२.३४
6. श्री योगकौस्तुभ ६ पू. पाद आचार्यश्री श्रीमन्नथुराम शर्मा, प्रकाशकः आनंदाश्रम, बिलखा
7. वही. पृ.१३५
8. योगशास्त्रम् – पृ. १४४, कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य, प्रकाशक :

ISSN : 2582-9092

9. पातंजल योगसूत्र –२.८०
10. गीता –१७.१५
11. पातंजल योगसूत्र –२.८१
12. वही २.४२
13. महाभारत (शान्तिपर्व) १७४.४६,१७७.५२, प्रकाशक :
14. श्री यागकौस्तुभ, पृ.१३६, पू. आचार्यश्री श्रीमन्नथुराम शर्मा
15. सुभाषितरत्नभाण्डागार, आवृत्ति–२
प्रकाशक : सस्तुं साहित्य कार्यालय, अहमदाबाद, प्रकाशन वर्ष : १६६५
16. पातंजल योगसूत्र द्य२.४३द्यद्य
17. भगवद्गीता– १७.१४.१५
18. श्री विष्णुस्मृति २.
19. पातंजल योगसूत्र (व्यासभाष्य द्यद्य२.१द्यद्य)
20. पातंञ्जल योगसूत्र द्य२.४४
21. पातञ्जल योगसूत्र द्यद्य२.४४ भाष्य द्यद्य
22. श्री भाणदेव, योगविद्या, पृ. ११५–११६,
प्रकाशक : प्रवीण पुस्तक भण्डार , राजकोट
23. विष्णुस्मृति –५५.२०
24. पू. पाद आचार्यश्री श्रीमन्नथुराम शर्मा , श्री योग कौस्तुभ, पृ.१५३
25. पातञ्जल योगसूत्र २.४५
26. वही २.१
27. पू. भाणदेवजी, योगविद्या, पृ.११८–११६
28. पातञ्जल योगसूत्र १.२३
29. वही १.२८ (भाष्य)
30. वही २.४५
31. वही २.२
32. पू. भाणदेवजी, योगविद्या, पृ.११८
33. योगयाज्ञवल्क्य– अ. प. ३,४,५,
34. योग प्रोटोकोल – आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.१
35. योग प्रोटोकोल – आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.१

संदर्भ ग्रन्थ :

1. पतंजलिनां योग सूत्रो – अनुवादक : रामकृष्ण तुलजाराम व्यास,
प्रकाशक : संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधीनगर
2. योगविद्या, पू. भाणदेव, प्रकाशक : प्रवीण प्रकाशन, राजकोट
3. श्री योगकौस्तुभ, पू. श्रीमन्नथुराम शर्मा, प्रकाशक : आनंदाश्रम, बिलखा
4. श्रीमद्भगवद्गीता

ISSN : 2582-9092

5. योग याज्ञवल्क्यम्
sanskritdocuments-org/doc_yoga/yogayagnyavalkya-html/
6. योग प्रोटोकोल – आयुष मंत्रालय, भारत सरकार
7. विष्णुस्मृति –
sa-wikisource-org/wiki/fo".kq स्मृतिःध्पञ्चपञ्चासत्तसोऽध्यायः

संस्कृत विभाग
के. एस. के. वी. कच्छ युनिवर्सिटी,
भुज कच्छ ३७०००१